मेरा काव्य-संसार

अक्कितम अच्युतन नम्बूदिरि

मेरे घरवालों ने कामना नहीं की थी कि मैं कवि बन जाऊँगा। कवि बनना गर्व की बात है— ऐसी गलतफहमी भी उनके मन में नहीं थी। वे चाहते थे कि उनका घराना— (अक्कितत्तु मना) कभी भी बर्बाद न हो। घर में एक बच्चे का जन्म नियत था। पूजा-पाठ, मनौतियाँ, जाति-भेद आदि को न मानकर सारे अभ्यागतों को भोजन, तेल-वस्त्र आदि देना, गायों को खिलाना, इन सारे आचारों को देखकर मैंने कदाचित सोच लिया होगा कि ठीक है, मैं जाकर इसी भूमि में जन्म लूँ।

परिवार में पुत्र पैदा हुआ तो बुजुर्गों के मन में कई आशाएँ पैदा हो गयीं। मुझे वेद मन्त्रोच्चारण का अभ्यास कराने लगे। घर की दिनचर्या बहुत कठिन थी। बचपन में मैंने कई शारीरिक-मानसिक कठिनाइयाँ झेली थीं। वहाँ कई पाबन्दियाँ थीं। मेरी कमर में सोने की ताबीज लटकती थी।

कुछ बुजुर्ग लोग यह भी कहने लगे कि यह उण्णि (बच्चा) मन्दबुद्धि है। यह भावना-संसार में विचरण करता है। मुझे भी बात कुछ सही लगी थी। लोग मेरे सामने खड़े होकर काफी देर तक बातें करते। थोड़ी देर बाद मेरे मन में सन्देह पैदा होता— वे लोग क्या कह रहे थे? मन्दिर में पूजा-कर्मों के लिए दूसरों के जाते वक्त एक बात का ध्यान रखता था। दूसरों के समान होशियार न होने के कारण मुझे थोड़ा हटकर रहना चाहिए। मैं कम बोलता था, शर्मीला भी था। खेल में निपुण लड़के मुझे अधिक तंग करते थे। हाथी जैसे कान वाला, बिल्ली जैसा कटखना कहकर वे मेरा मजाक उड़ाते थे। मेरे मन में तब दुख भर जाता। एकान्त रातों में मैं कमरे के कोने में सिकुड़ कर बैठ अन्तरात्मा की काली गहराई में उतरकर सिसकने लगता था।

माँ मुझे पास बिठाकर एषुत्तच्छन की रामायण की पंक्तियाँ मीठी तान में सुनाती थीं। जब कभी अचानक भिखारिन आकर चावल माँगती थी तो मेरी दृष्टि भी उस पर पड़ जाती थी। हम बच्चे अक्सर नम्बूदिरी बालिकाओं के साथ तालाब में जाकर नहाते थे। इसमें पथ-भ्रष्ट होने की बात नहीं थी। एक बार मैंने एक बाला का चित्र कोयले से बनाया। कौपीन लेकर खड़ी बाला का दृश्य था वह। वह चित्र देखते ही सभी बालिकाएँ जोर से हँसने लगी थीं। उसका कारण मैं नहीं जान पाया। तभी से उस नम्बूदिरी बालिका ने मुझसे बोलना छोड़ दिया था। मैं भी बहुत उदास हो गया था। एक दिन जब वह रोने लगी तो मैं भी साथ में रोने लगा था।

बचपन में मैं दीवारों पर चित्र बनाता था। मन्दिरों की दीवारों पर भद्दे चित्र बनाने वालों के प्रति मेरे मन में रोष था। एक दिन दीवार पर मैंने कुछ पंक्तियाँ लिख डालीं। मन्दिर की दीवारों पर भद्दे चित्र बनाने वालों को शक्तिशाली ईश्वर दंड देगा, यही उन पंक्तियों का आशय था। मुझे तब पता नहीं था कि यह मेरी कविता का श्रीगणेश था।

उन दिनों भक्त कवि ओखंकरा की कविताएँ मैं

उन्मत्त होकर गाता था। अक्षर श्लोकों आलाप में भी रुचि थी। एक बार आम के पेड़ पर चढ़कर आम तोड़कर खा रहा था। घर वापस आते समय एक घटना हुई। मेरे सिर के अन्दर बैठकर जैसे कोई बोल रहा हो। घर पहुँचते ही कुछ श्लोक निकल पड़े। वे भगवान गुरुवायूरप्पन के बारे में थे। उनका छन्द स्रग्धरा या शार्दूलविक्रीडित था। अनुप्रास का मेल भी हुआ था। एक साथ आनन्द और आश्चर्य का अनुभव हुआ।

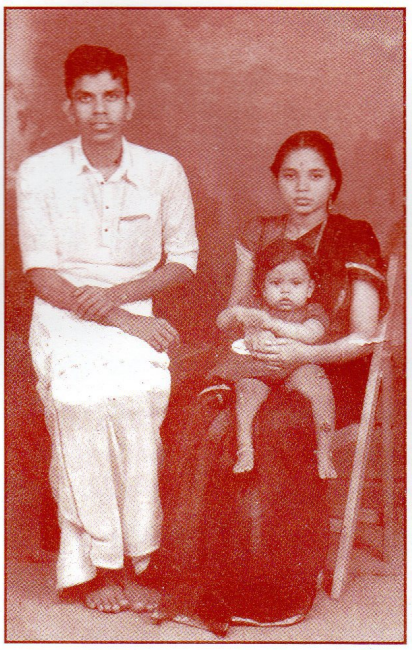

Akkitham with wife

तब सोचा— आगे क्या करूँ? सियार को कछुआ मिलने की-सी हालत थी वह। मैंने एक कविता लिखी? क्या वह सच था? आठ पंक्तियाँ थीं। पढ़कर सुनाने के लिए एक आदमी होना चाहिए था जो समझदार हो। मजाकिया आदमी नहीं। अच्छी तरह से पुराण-पारायण करने वाली पाप्पियम्मा के पास पहुँचा। ''क्या यह कविता तूने लिखी है?'' उन्होंने पूछा। ''जी हाँ'' मैं बोला। ''इसकी शब्द योजना ठीक है, मैं कंठस्थ करूँगी। गुरुवायूरप्पन के सामने गाऊँगी...'' उन्होंने कहा। मधुपान के बाद थक गयी किसी मधुमक्खी के समान थी मेरी हालत। पाप्पियम्मा ने कई लोगों से इसके बारे में कहा। बात सुनकर माँ आह्लादित हो उठीं। वे एक पल तक मुझे देखती रहीं, कुछ बोलीं नहीं। मैंने देखा कि उनकी आँखों में आँसू छलक आये थे।

कारा में बन्द देवकी के उदर से शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी होकर निकल आये श्रीकृष्ण को जब माँ देवकी ने देखा था, तब उनकी भी आँखों में आँसू आये थे न! बेटा, तू अद्भुत रूप छोड़ दे— यही देवकी ने कहा था। मेरी माँ ने भी यही कामना प्रकट की थी कि और कुछ न दे, उम्र दे। कोई गाली न दे, ऐसा बना।

उस दिन के बाद मैं समझ गया था कि मेरे हृदय में आँखें हैं तथा मेरा मन एक आकाश के समान विकसित हो रहा है। कुछ दिनों के बाद पाप्पियम्मा वह कविता माँगने आयीं, प्रतिलिपि बनानी थी। तब तक वह कविता मुझसे खो गयी थी। तब तक मैंने संस्कृत पढ़ना शुरू कर दिया था। अपनी लापरवाही पर मुझे पश्चात्ताप हुआ। एक दिन कुमरनेल्लुर स्कूल से एस.एस.एल.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण हुए दो बेरोज़गार आदमी तालाब में नहाने आये। मैं भी वहाँ था। वे मलयालम में बातें कर रहे थे। मुझे देखते ही उनकी बातचीत अँग्रेज़ी में बदल गयी। तब मुझे लगा कि यह मेरा अपमान है। उस दिन मैंने दृढ़निश्चय किया कि मैं भी अँग्रेज़ी पढ़ूँगा।

उण्णिकृष्ण मेनन मेरे अँग्रेज़ी के गुरु थे। वे बड़े विद्वान थे। उनके पांडित्य, परिपक्वता, नैतिक धीरता और त्याग मनोवृत्ति से मैं मुग्ध हो उठा था। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया कि एक दिन नम्बूदिरी महान बनेगा पर वह दिन देखने के लिए तब तक वे रहेंगे नहीं।

मैंने पहले हस्तलिखित पत्रिकाओं में कविता तथा कहानियाँ लिखीं। कुछ निबन्ध भी लिखे। गोपाल पिल्लै की पत्रिका 'राजर्षि' में मेरी कविता पहली बार छपी। उण्णिकृष्ण मेनन ने कई साहित्यकारों से मेरे बारे में कहा। आगे चलकर जिन दो प्रमुख साहित्यकारों के सम्पर्क में मैं आ सका— वे थे इडश्शेरी गोविन्दन नायर व कुट्टिकृष्ण मारार। मेनन मास्टर ने मेरे जीवन चैतन्य को पानी देकर पोषित किया था लेकिन इडश्शेरी ने उसको सूर्यरश्मि दी थी। उनका एक वाक्य नयी पीढ़ी के बच्चों के लिए बड़ा मार्गदर्शक लगता था— ''आत्मा के चारों तरफ फैले अनावश्यक झाड़-झंकाड़ को उखाड़ फेंको, तभी मालूम होगा कि जन्म से हर मनुष्य भला होता है।'' मेरे समवयस्क युवा, कडवनाडु कुट्टिकृष्णन भी एक उत्साही कवि थे।

हमारी साहित्यिक सभा में कुट्टिकृष्ण मारार, पी.सी. कुट्टिकृष्णन, एन.पी. दामोदरन, टी.वी. शूलपाणि वारियार, टी. गोपालकुरुप्प और पी. नारायणन वैद्य भी आते थे। मारार ने मेरी कई कविताएँ पढ़ी थीं। कुछ कविताओं को सुधारा भी था। केवल एक बार उन्होंने एक कविता की सराहना की थी। उन

दिनों 'मातृभूमि' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई थी। बाद में भेजी कविताएँ अप्रकाशित ही रहीं। तब मैंने कुट्टिकृष्ण मारार को एक कविता, लड़की के नाम से (के.एस. सरोजिनी) भेजी। किसी ने मुझे सलाह दी थी कि लड़की का नाम रखने से कविता प्रकाशित होगी। मैंने सम्पादक को लिखा था कि मैं एक गरीब लड़की हूँ। बाकी झूठ अब याद नहीं, जो भी हो, वह कविता प्रकाशित हो गयी। बाद में उस सम्पादक से सच कहने की बात सोची, लेकिन कभी साहस नहीं हुआ।

Akkitham with with his Guru Mahakavi Edassery

मैंने एक बात पर हमेशा जोर दिया है। मेरे जीवन पर फैलती एक लता है, मेरी कविता। उस लता की टहनियों से निकलती जड़ें पेड़ पर चिपकेगीं तभी लता गिरने से बचेगी, ऐसा मेरा मानना था। बाद में मेरी कविता में सार रूप में एक जीवन-दर्शन भी उभर आया। मैं जीवन के भौतिक तथा आध्यात्मिक अंशों को मानकर चलता हूँ। गुठली या आम का पेड़— पहले क्या पैदा हुआ— ऐसा प्रश्न अब मुझे परेशान नहीं करता। सत्य के हज़ार चेहरे होते हैं। इस विश्व के सारे स्पन्दन व चीजें जब परस्पर सहयोग से आगे बढ़ती हैं तभी वे शक्तिशाली तथा सुन्दर दिखती हैं। गोचर वस्तुओं के सारांश हम आज तक नहीं देख सके हैं। मैं सारे भौतिक और मानसिक शोषणों से नफरत करता हूँ। मैं एक नवसंसार का सपना देखता हूँ। वहाँ सारे लोग काम करेंगे। हाथ और जीभ पर जंजीरें नहीं पड़ेंगी। दिमाग और पेट भरेंगे। मेरी विनम्र बुद्धि सोचती है कि मानव मन तब भी पूर्णत: सन्तुष्ट नहीं हो सकता। क्षितिज कितना सुन्दर होता है, लेकिन वह हमेशा दूर ही बना रहता है। क्षमाशील आदमी को ही सुख मिलता है। सुख का अर्थ मात्र दुख को भूलना है। दुख की एक मात्र प्रत्यौषधि स्नेह है। मनुष्य का असली ठिकाना वही है।

सारे साहित्यकार सोचते हैं कि उन्हें उचित कीर्ति नहीं मिली है। यह बोध मुझे भी होता है कि मुझे मेरे लायक कीर्ति आज या कल जरूर मिलेगी। एक दिन सुबह जाग कर उठते ही सौभाग्य मेरे सिर पर बरस जाने जैसी कोई घटना नहीं हुई। काश! वह यूँ ही बरसे— इस विचार से मैं उसके नीचे खड़ा हूँ, यह कहने में मुझे कोई संकोच भी नहीं है। फिर भी एक बात कहना चाहता हूँ, विवेचनात्मक बुद्धि से जिन उपलब्धियों की प्रतीक्षा की थी उनका एक चौथाई अंश मुझे हमेशा मिला है। उसके बारे में जब न सोचा जाए,उसी पन्ने पर ही वह आती है। सारी कामनाओं की पूर्ति का आनन्द इसी वजह से मुझे मिल रहा है। इसीलिए मेरे मन में कोई शिकायत नहीं है।

मैं मानता हूँ कि मेरी रचनाएँ पचहत्तर प्रतिशत जीवन्त हैं। भारी प्रशंसा अप्रत्याशित रूप से आती है। कभी तीखी आलोचना भी आती है। दोनों एक ही बात को प्रमाणित करती हैं। आमतौर पर आलोचना मुझे आनन्द देती है। मेरा ख्याल होता है इसमें आनन्द है। बिरले अवसरों पर आलोचक का उद्देश्य सत्य की तलाश से विचलित होता है। तब दु:ख भी महसूस होता है। फिर भी किसी से मुझे नफरत नहीं होती है। हर आदमी अपनी-अपनी दुनिया में होता है। यह विचार मेरे मन में रहने के कारण मुझे किसी से घृणा नहीं होती है।

मेरा हमेशा यह विश्वास रहा है कि मेरी सर्वोत्तम कविता अभी लिखी जानी है। हर एक कविता लिखते समय यही लगता है कि यह पूर्ववर्ती कविता से बढ़िया है। लिखने के क्षण में अभूतपूर्व हाथी जैसे आ जाता है हृदय की ओर और हृदय के विशाल दरवाजे 'टुटुम' की आवाज के साथ खुल जाते हैं। पूर्ण होने के पहले ही कविताओं को मैं कभी-कभी फाड़

डालता हूँ। सारी कविताएँ कई बार सुधारी जाती हैं। कभी मध्य भाग में, कभी अन्त में। इसका कोई निश्चित क्रम नहीं। मध्य या अन्त की पंक्तियाँ कभी आरम्भ में फूट पड़ती हैं। कभी-कभी कागज पर उतरने के बाद कविता के भाव व सन्धि-शिल्प सुधर-निखर आते हैं। कुछ कविताओं के भाव व सन्धि-शिल्प पहले तैयार हो चुके हैं। किन्तु आज तक ये कविताएँ पूरी नहीं हुई हैं। आगे उन शिल्पों की लापरवाही करके वे कविताएँ कदाचित लिखी जाएँगी, जिन्हें लिखने की बात सोची नहीं थी ऐसी प्रतीत होने वाली कुछ कविताएँ भी मैंने दो-चार घंटों में पूरी की हैं। अक्सर यही लगा है कि यह मैं नहीं लिख रहा हूँ, मेरे भीतर का एक दूसरा आदमी लिख रहा है। क्या यह मेरी सोच-समझ का भ्रम है? ऐसा अद्‌भुत भी कभी होता है? कभी लगता है कि मैं अमुक कविता पूरी नहीं कर पाऊँगा। किन्तु अचानक एक अनुभूति-कल्लोल आकर उसको पूरा कर जाती है। लिखना शुरू करता हूँ तो एक असह्य वेदना महसूस होती है। वह एक उन्माद है। कुछ दिनों तक वह बना रहता है। खाना-सोना सब गड़बड़ा जाता है। कभी कुछ खाया तो कुछ समय तक सो गया। लिख-लिखकर हाथ थक जाए, तो पान खाऊँगा या सिगरेट पीऊँगा।

पूरा होने पर—एक परितोष मिलता है। मैं एक अजीबोगरीब आदमी हूँ— ऐसा लगता है। बहुत समय बीतने पर सोचता हूँ कि मुझे आगे साहित्य-सृजन नहीं करना है। मन कहीं टिकता नहीं। सोचना नहीं हो पाता। पढ़ना भी मुश्किल हो जाता है।

मैं कविता लिखता क्यों हूँ? क्या वह समाज की सेवा के लिए है? ऐसी बात की तीव्र अभिलाषा होती है। किन्तु अगर बात सिर्फ इतनी है तो विषय मिलने पर भी, बाहर से माँग आते समय भी क्यों लिख नहीं पाता हूँ? मेरी स्थिति तो यही है कि चाह के क्षण में ही सृजन का सम्भव होना है या फिर नहीं होना। इतना ही नहीं— बाद में लिखूँगा— ऐसा सोचकर रुक न पाने की परेशानी भी कभी-कभी कविता के रूप में फूट पड़ती है। कुल मिलाकर यही स्थिति है। आप जैसा चाहे वैसा अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

अब मेरी प्रतिनिधि कविताओं का एक संकलन हिन्दी में आ चुका है। हिन्दी के पाठक मेरी कविता की भाव-भूमि का आस्वादन इस अनुवाद के माध्यम से कर सकेंगे यही मेरी कामना है। भारत की प्रमुख भाषा के रूप में हिन्दी के स्थान से मैं अवगत हूँ। केरल आकर श्री यू.के.एस. चौहान ने मलयालम भी भली-भाँति सीख ली। भारतीय प्रशासनिक सेवा के दायित्व-निर्वाह के बीच साहित्य-सृजन और अनुवाद में भी उन्होंने रुचि बनाये रखी है। उनकी भाषा-सेवा का प्रयोजन हिन्दी और मलयालम दोनों के पाठकों को बराबर मिलता रहा है। चौहान के उत्साह की मैं सराहना करता हूँ। कालीकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा हिन्दी लेखक डॉ. आरसु की सेवा के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ भारतीयता का प्रतीक है। मेरी मातृभाषा मलयालम के वरिष्ठ कवि जी. शंकर कुरुप्प को ज्ञानपीठ का पहला पुरस्कार मिला था। मलयालम के महत्त्व को इस संस्था ने तभी से पहचान लिया था। ज्ञानपीठ ने तकषि, एस.के. पोट्टेक्काट तथा एम.टी. वासुदेवन नायर का भी सम्मान किया है।

हम मलयालम-भाषी ज्ञानपीठ के प्रति आभारी हैं।

—अक्कितम